॥श्रीः॥

महिम्नःस्तोत्रम्

प्रकाशक

कालिदास संस्थानम्

महामनापुरी, वाराणसी

पुष्पदन्तविरचितं

श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्

संशोधक संपादक अनुवादक
महामहोपाध्याय
प्रोफेसर रेवाप्रसाद द्विवेदी
इमरीटस प्रोफेसर
काशीहिन्दूविश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशक
कालिदाससंस्थान
२८, महामनापुरी, वाराणसी-५ श्रावणपूर्णिमा, २०५७

श्रीगणेशाय नमः

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरमात्तपङ्कजम् ।।[1]

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ।।

आत्मा त्वं, गिरिजा मतिः, सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः, स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद् यत् कर्म करोमि तत् तदखिलं शम्भो! तवाराधनम् ।।

जै जै जै गिरिराजकिसोरी। जै महेस मुखचंद-चकोरी।।
जै गजवदन खडाननमाता। जगतजननि दामिनिदुतिगाता ।।
नहि तव आदिमद्धअवसाना। अमित प्रभाउ वेद नहि जाना।।
भव भव विभव पराभव कारिनि। विश्वविमोहिनि स्वबसबिहारिनि।।

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेख ।।

दीनदयाल जालान

---

१. विघ्नेश्वरपादपङ्कजमिति पाठः प्रचलितोऽपि हेयः, विशेषणान्तरानन्वयात्, तान्त्रिकेषु चात्तपङ्कजमित्यस्यैव प्रसिद्धेः। सं.

निवेदन

काशीनगरी के प्रसिद्ध उद्योगपति **बाबू दीनदयाल** जी जालान ने सनातन धर्म की सेवा का व्रत ले रखा है। विद्वान् महात्माओं की सेवा तथा कथा आप करते कराते ही रहते हैं, गतवर्ष आपने भगवान् **सत्यनारायण** की कथा भी छपवाई और उसका निःशुल्क वितरण किया। इस वर्ष आप भगवान् शिव का अद्वितीय स्तोत्र **'श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र'** छपवा रहे हैं। इसका भी वितरण ही लक्ष्य है।

इस स्तोत्र का नाम **'शिवमहिम्नःस्तोत्र'** ही है जिसमें विभक्ति का लोप नहीं है।

इस स्तोत्र का लगभग दशम शती का एक शिलालेख महेश्वर के 'अमरेश्वर' मन्दिर में उत्कीर्ण है। इसमें केवल १-३१ पद्य हैं। इसके पूर्व कविवर राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में इस स्तोत्र का 'किमीहः किंकायः' पद्य उद्धृत किया है। राजशेखर का समय नवम शती है। संस्कृत भाषा की वाक्यरचना से भी यह निश्चित है कि यह स्तोत्र आठवीं शती से कम प्राचीन नहीं है।

'स्तुति' या 'स्तोत्र' शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में गुणकथन है। गुण भी वास्तविक और अवदानों से सिद्ध। इस स्तोत्र में एक श्लोक में भगवान् शिव की एक लीला का कथन है। रावणलीला के लिए दो श्लोक दे दिए गए हैं। प्रथम में भगवान् के अनुग्रह का वर्णन है और दूसरे में निग्रह का।

'अर्थान्तरन्यास' अलंकार इस स्तोत्र में मुख्य अलंकार है ठीक वैसे ही जैसे महाकवि कालिदास के मेघदूत में।

इस स्तोत्र का एक महत्त्वपूर्ण संस्करण काशी के ही **संस्कृतविश्व-विद्यालय** से पञ्चमुखीटीका के साथ १९९६ सन् में छपा है। उसे भी श्रद्धालुजन देख सकते हैं।

रेवाप्रसाद द्विवेदी

शिवमहिम्नःस्तोत्रम्

ॐ नमः शिवाय

श्रीपुष्पदन्त-कृतं

शिवमहिम्नःस्तोत्रम्

[**भक्तजन!** आप सब मनुष्ययोनि के प्राणी हैं, किन्तु आपकी पङ्क्ति में दिव्ययोनि के महामहिम गन्धर्व श्रीपुष्पदन्त भी खड़े हैं जो संगीत के सभी ग्रामों में गा भी सकते हैं।] भक्तराज पुष्पदन्त

पुष्पदन्त उवाच

[संस्कृतभाषा में, शिखरिणी छन्द में और गन्धर्व ग्राम में गान करते हुए बहस छेड़ रहे हैं, और अपने बचाव में भगवान् शिव से] कह रहे हैं—

महिम्नः पारं ते पर-मविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः।।१।।

हे भगवन्! आपका एक नाम हर भी है कृपया याद रखिए। आपकी स्तुति करना यदि आपकी महिमा के पर पार से अनभिज्ञ व्यक्ति को शोभा न देता हो तो जो वाणी ब्रह्मा आदि की हैं वे [वेदवाणी] भी छूट जाती हैं। और यदि अपनी बुद्धि की पहुँच तक की बात करने वाला प्रत्येक व्यक्ति आपकी स्तुति में अपात्र न हो तो मुझ अकिञ्चन के इस दुस्साहस पर भी उँगली नहीं उठ सकती।।१।।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः।।२।।

भगवन्! आपकी महिमा वाणी और मन दोनों का मार्ग लांघ चुकी है, यहाँ तक कि भगवती श्रुति, जो सबसे पुरानी और मान्य वाणी है वह भी जिस [आप] का गान नेति नेति के द्वारा अतद्व्यावृत्ति के पथ से करती है, वह भी चकित होकर। फर भी कौन सकता है आप और आपकी महिमा की स्तुति? [क्योंकि स्तुति है गुणकथन। सो] कौन कह सकता है कि आप और आपकी महिमा में कितने और किस किस प्रकार के गुण हैं। प्रमाण भी ऐसा कौन सा हो सकता है जो आपको और आपकी महिमा को विषय बना सके, क्योंकि उसमें तीनों प्रमाण कट गए प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। रही बात नई वाणी की तो उसमें किसका मन प्रवृत्त होकर असमर्थ सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार किसकी वाणी भी प्रवृत्त होकर असमर्थ सिद्ध नहीं होती।।२।।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्! किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन! बुद्धिर्व्यवसिता।।३।।

[स्तुति से स्तूयमान में विस्मय जागता है, किन्तु] **हे ब्रह्मन्!** आपके लिए मधुमय और अमृतरूप वाणी [वेद] रचने वाले देवगुरु [पितामह ब्रह्मा] की वाणी भी क्या विस्मयकारी सिद्ध हो सकती है? [नहीं, कदापि नहीं]। मेरा तो लक्ष्य है आपके गुणों के कथन से उत्पन्न पुण्य से अपनी

वाणी को पवित्र करना। **हे त्रिपुरारि!** मेरी बुद्धि इसी प्रयोजन से प्रवृत्त हुई है आपकी स्तुति में।।३।।

तवैश्वर्यं यत् तज्जगदुदयरक्षा-प्रलयकृत्,
त्रयीवस्तु, व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन् वरद! रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः[१]।।४।।

हे वरद! आप ईश्वर हैं, आपका ऐश्वर्य है कारण संसार की उत्पत्ति, रक्षा और समाप्ति में।[२] वही है वक्तव्य वेदवाक्यों का[३]। गुणभेद से वह भिन्न-भिन्न प्रकार के तीन-तीन शरीरों में ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के[४] रूप में प्रकट है। इतने पर भी कुछ जड़बुद्धि जन इस [ऐश्वर्य] का खण्डन करने हेतु हल्ला मचाए हुए हैं। बड़ा ही अभव्य है वह, अच्छा लगता है वह केवल अभव्यों को।।४।।

किमीहः किङ्कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः।।५।।

हे भगवन्! [माना कि यह नियम है कि निर्माणकर्त्ता को सेच्छ इच्छायुक्त, शरीरवान्, सक्रिय, साधार और उपादानयुक्त होना चाहिए, नहीं तो वह कार्य निष्पन्न नहीं कर सकता, किन्तु ये नियम आप पर लागू नहीं होते, क्योंकि आपका जो ऐश्वर्य है वह कल्पना से

१. जड वह जो सभी प्रमाणों से प्रमाणित तत्त्व पर संदेह करे।
२. कार्य से कारण का अनुमान।
३. शब्दप्रमाण।
४. प्रत्यक्षप्रमाण।

परे है। इतने पर भी कुछ विचारक, जिनकी मति मारी गई है यह कुतर्क किया करते हैं कि] यदि ईश्वर है इस संसार का स्रष्टा तो बतलाइए कि किस इच्छा से करता है वह यह सृष्टि। बतलाइए कि तब उसका शरीर कैसा हुआ करता है? बतलाइए कि इस कार्य में उसकी उपाययोजना कैसी हुआ करती है? यह भी ज्ञातव्य है कि उसके लिए आधार क्या है और किस सामग्री का करता है वह उपयोग? यह तर्क केवल कुतर्क है। इससे उत्पन्न हुआ करते हैं संशय और मोह।।५।।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर! संशेरत इमे।।६।।

हे अमरवर! सभी लोक सावयव हैं। १. इतने पर भी कुछ दार्शनिक [जैसे कर्ममीमांसक] मानते हैं कि इन [लोकों] का जन्म होता ही नहीं? [क्या यह ठीक है?] २. जन्म भी क्या जन्मदाता के बिना संभव हो सकता है? ३. जन्मदाता भी यदि ईश [समर्थ] न हो तो क्या कुछ भी होना संभव हो सकता है? ४. फिर यह तो सोचा जाए कि इस विशाल विश्वं को रचने में आवश्यक परिकर [सामग्री] क्या है? जो कि **हे सर्वश्रेष्ठ देव**! ये भले आदमी आपके प्रति संशय प्रकट करते हैं। छिः छिः, ये तो मति-मन्द हैं।।६।।

यहाँ निम्नलिखित मान्यताएँ निहित हैं—

१. यद् यत् सावयवं तत् तत् साऽऽदि [कार्यम्]।
२. यद् यत् कार्यं तत् तत् साधिष्ठातृकम्।

३. यो योऽधिष्ठाता स सर्व ईशः।

४. यद् यन्निर्माणं तत्तत् सपरिकरम्।

५. एतच्चतुष्टयमृते न संभवति लोकानां संघटना।

६. लोकाश्च लोक्यन्ते दृश्यन्त इति प्रत्यक्षाः, न चोचितः प्रत्यक्षस्याऽपलापः।

७. प्रत्यक्षाऽपलापे हेतुर्मतेर्मान्द्यमेवैकम्।

८. धिक्च तान् ये मन्दाः।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।७।।

हे अमरवर! '[वेद]त्रयी [ऋक्, यजुः, साम]' सांख्य, योग, पाशुपत आगम और वैष्णव आगम, इस प्रकार प्रस्थान भिन्न भिन्न हैं और सभी के लिए धारणा या घोषणा है कि यह प्रस्थान गुण/लाभकारी है। ऐसा इसलिए कि रुचियाँ अनेक प्रकार की हैं। इतने पर भी यह सत्य और सुनिश्चित है कि सभी मनुष्यों का लक्ष्य एक ही है। वह हैं आप। कैसे? वैसे ही जैसे सभी जलस्रोतों का गन्तव्य समुद्र। भेद है मार्गों का। कोई मार्ग सीधा और सरल होता है और कोई टेढ़ा और कठिन।।७।।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत् तव वरद! तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तान्तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।।८।।

हे भगवन्! आप हैं तो वरद किन्तु आपकी संपत्ति [तन्त्रोपकरण] यह है—महान् उक्षा [बड़ा, बूढ़ा बैल यानी अहिंसक सनातन धर्म], खट्वाङ्ग[1] [खट्वा = खटिया का अङ्ग पावा], परशु [फरसा], अजिन [मृगचर्म और व्याघ्र कृत्ति], भस्म, सर्प और कपाल। बस यही और इतनी ही है आपकी पूँजी। परन्तु आपके भ्रुकुटिभङ्ग से देवता लोग पा जाया करते हैं वे वे समृद्धियाँ। दाता खाली किन्तु उसका याचक उसी के हाथ से परिपूर्ण। यह क्या? यही कि स्वात्माराम को विषयमृगतृष्णा भरमा पाती नहीं।।८।।

ध्रुवं कश्चित्[2] सर्वं, सकलमपरस्त्व[3]ध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये[4]।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु, ननु धृष्टा मुखरता।।९।।

---

१. खट्वाङ्ग का अर्थ मधुसूदन सरस्वती ने खटिया के पाँव के आकार का अस्त्र बतलाया है। नारायण ने खट्वाङ्ग के अर्थ दिए हैं—१. अस्त्रविशेष, २. डण्डे में खोंस कर खड़ा किया गया ब्रह्मकपाल (ब्राह्मण का कपाल) और ३. नरपञ्जर भी 'खट्वाङ्गं नरपञ्जरम्'। 'खट्वाङ्गोऽस्त्री वृक्षभेदे पृष्ठास्थिनि चितेन्धने दिलीपनृपतौ पुंसि' वाङ्मयार्णवः। तन्त्र का अर्थ कुटुम्बपालन के लिए अपेक्षित व्यवस्था।

२. मधुसूदन सरस्वती ने ध्रुवतावादी बतलाया है सत्कार्यवादी सांख्य को, अध्रुवतावादी बतलाया है सौगत बौद्धों को तथा उभयवादी तार्किकों को।

३. किसी ने अर्थात् बौद्ध ने।

४. यह मत तार्किक अर्थात् नैयायिकों का माना गया है। व्यस्त = अन्योन्याऽमिश्रित। विस्मयो यथार्थज्ञानविमूढता। असमर्थोऽपि स्तौम्येव, न च जिह्रेमि। अत्र हेतुर्मुखरता। ध्रुवं = जन्ममृत्युरहितम्, अध्रुवं = जननमरणशीलम्, ध्रौव्याध्रौव्ये जननमरणशीलत्वाशीलत्वे। व्यस्तौ विषयौ ययोस्ते। 'तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने' कुमारसंभवः ५.७२, कालिदासः। ध्रौव्याध्रौव्ययोर्विवादे विनिगममलभमानोऽपि न विरमामि स्तुतिधाष्टर्यात्। मुखराणामयमेव स्वो भावः।

हे पुरारे! इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड को किसी [सत्कार्यवादी सांख्य] ने तो बतलाया ध्रुव अर्थात् जन्म और मृत्यु दोनों से दूर। इसके विरुद्ध किसी ['सर्वं क्षणिकं' मानने वाले बौद्ध] ने बतलाया अध्रुव [क्षणिकविज्ञान-सन्तानरूप], किसी [तार्किक] ने बतलाया दोनों ही प्रकार का [अंशतः ध्रुव और अंशतः अध्रुव]। ध्रुवता जिस अंश में होती है वह अंश केवल ध्रुव ही होता है। इसी प्रकार जिस अंश में होती है अध्रुवता वह केवल अध्रुव ही होता है। न ध्रुव में अध्रुवता रहती और न अध्रुव में ध्रुवता। दोनों के क्षेत्र अलग-अलग और बँटे हुए हैं। परमात्मा भी ध्रुव को नहीं बनाते अध्रुव और नहीं बनाते अध्रुव को ध्रुव।

इन सबका नाम है 'पुर' जिसका आप करते रहते हैं विनाश जब यह असुर बन जाता है। तो **हे पुरारे!** यह जो विराट् ब्रह्माण्ड है इसके खण्डों से ही मेरी बुद्धि विस्मित है। कैसे करूँ स्तुति आपकी, जो समग्र और पूर्ण हैं। मुझे लाज भी नहीं, मुखर जो ठहरा और मुखरता तो हुआ ही करती है धृष्ट।।९।।

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरु गृणद्भ्यां गरिश! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति।।१०।।

हे गिरिश! आपने एक बार धारण कर लिया ज्योतिष्कम्भ का रूप। वह था आपका ऐश्वर्य ही। उसे नापने निकले विष्णु और ब्रह्मा। ब्रह्मा गए ऊपर और विष्णु नीचे, परन्तु प्रयत्न करने पर भी नाप सके नहीं। पश्चाद् अतिशय भक्ति और अतिशय श्रद्धा के द्वारा मन ही मन आपके इस ऐश्वर्य का अनुभव करने में जो लगे सो लगे ही रह गए। आपकी अनुवृत्ति भला कौन सा फल नहीं देती।।१०।।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरिव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर! विस्फूर्जितमिदम्।।११।।

हे त्रिपुरहर? रावण जो था, उसको तीनों लोक यूँ ही मिल गए। वे निष्कण्टक भी थे। कोई भी वैरी उनमें नहीं था। यहाँ तक कि उस [रावण] की भुजाओं में जो युद्ध की खुजली थी उसे मिटने का अवसर मिला ही नहीं। वह खुजली बनी की बनी रह गई। त्रिपुरनामक असुर को नष्ट करने वाले **हे त्रिपुरारे!** यह सब फल था आपके चरण-कमलो में स्थिर भक्ति का। उस [रावण] ने आपके चरण-कमलों पर अपने सिरों को जो कमल बनाया था और की थी आपकी कमलपूजा।।११।। [यहाँ प्रतिपादित हुआ रावण पर भगवान् का अनुग्रह]।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलस-चलिताङ्गुष्ठ-शिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः।।

भगवन्! इस रावण की भुजाओं का जो वन था और उस भुजवन में जो सार [शक्तिपदार्थ] था उसने यह प्राप्त किया था आपकी सेवा से, किन्तु उसने इसका परीक्षण किया आपके ही निवासस्थान कैलास पर। आपने भी अपने पैर के अँगूठे का सिर [अगला भाग] धीरे से डुला दिया। परिणाम यह हुआ कि उसे स्वयं को बचाने के लिए पाताल तक में सुलभ नहीं हुई जगह। जो खल [दुष्ट] होता है

वह यदि समृद्धि पा जाए तो अन्धा हो जाता है। [यहाँ प्रतिपादित हुआ रावण का निग्रह। कदाचित् यह पद्य प्रक्षिप्त है। अन्य सभी भक्तों के लिए एक एक पद्य ही दिया गया है। रावण के लिए आए इन दो पद्यों में प्रथम पद्यं स्थिर भक्तियोग का प्रतिपादन कर रहा है जो भारतीयता का मेरुदण्ड है। देखिए महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीय का नान्दी पद्य—'वेदान्तेषु' इत्यादि। यहाँ अर्थान्तरन्यास होना चाहिए था 'सफलतितरां कस्त्वयि खलः।' इस कारण यदि प्रक्षिप्त है तो द्वितीय ही]।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेय-त्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः।।१२।।

हे वरद! आपका एक भक्त था बाणनामक असुर। उसने तीनों भुवनों को अपने अधीन कर उनका शासन अपने परिजनों को सौंप रखा था और इस प्रकार उसने इन्द्र की समृद्धि को भी छोटा सिद्ध कर रखा था। इस बाणासुर के विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, उसने आपके श्रीचरणों की वरिवस्या [सेवा, परिचर्या] जो कर रखी थी। आपके सामने सिर की अबनति क्या क्या उन्नति सुलभ नहीं कराती।।१२।।

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुर-कृपा-
विधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन! विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः।।१३।।

हे त्रिनयन! जब समुद्रमन्थन हुआ और उससे ज्योंहीं हालाहल प्रकट हुआ तो उपस्थित हो गया था संपूर्ण ब्रह्माण्ड का अकाल-क्षय। देव और असुर सबके सब चकित [किंकर्त्तव्यविमूढ] हो गए थे। तब आपने ही उन पर कृपा की थी और छिपा लिया था उस धधकते विष को अपने कण्ठ में। काले रंग के इस विष से उल्टे आपके गौर वर्ण के कण्ठ की शोभा ही बढ़ी, न बढ़ी हो ऐसा नहीं। भुवनभयभङ्ग में निरत महानुभावों का विकार भी श्लाघनीय ही हुआ करता है।।१३।। (विष शब्द पुँल्लिङ्ग भी है)

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवाऽसुर-नरे
निवर्त्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश! त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्त्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः।।१४।।

हे ईश! कामदेव के बाणों ने देव, दानव और मानवों पर विजय ही पाई है, वे इन सब पर जब टूटे तब तब नियमतः सफल ही होकर लौटे, ऐसा नहीं कि कभी असफल हुए हों। वे अमोघ हैं। किन्तु हे ईश! इसी काम ने आपको भी अन्य देवताओं सा माना तो होकर रह गया सदा के लिए स्मरण का विषय, भस्म। वशी महापुरुषों का तिरस्कार अच्छा नहीं होता।।१४।।

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्-भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।।१५।।

हे विभो! हे विराट्, हे विश्वमूर्त्ते, हे नाथ, हे अष्टमूर्त्ते! आपको नाँचना पड़ता है, और आप नाचते हैं जगत् की रक्षा के लिए, क्योंकि

प्रदोषकाल में उत्पन्न राक्षस आपके नृत्य से ही नष्ट होते हैं, उन्हें वैसा ही वर प्राप्त है, परन्तु हो जाता है उल्टा = प्रलय। तीनों लोकों में भू बहुत ही विस्तृत है, परन्तु वह भी पादाघात सह नहीं पाती और उसका अस्तित्व सन्देह में पड़ जाता है। दूसरा लोक है भुवः जिसे विष्णुपद भी कहा जाता है। उसके भी सारे ग्रहनक्षत्र आपके [1]परिघ [अर्गलादण्ड] जैसे लम्बे-लम्बे भुजदण्डों से अस्तव्यस्तध्वस्त हो जाते हैं। उसके ऊपर तृतीय लोक है द्युलोक। उसके भी तटबन्धों पर पहुँच जाती है चोट आपकी बिखरी जटाओं की। तो हे नटराज, हे नटेश्वर इस नृत्य में आपकी विभुता ही प्रतिकूल पड़ रही है। न आप इन सबसे बड़े होते और न होता यह परिणाम।।१५।।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघु[2] दृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः।।१६।।

हे प्रभो! जल का जो प्रवाह आकाश में व्याप्त था अतः जिसमें तारागण फेन जैसे लग रहे थे वही आपके सिर पर दिखाई दे रहा था फुहार जैसा अतीव लघु। पृथिवीलोक में आ जाने पर इसी जल-प्रवाह ने [अगस्तजी द्वारा निपीत अतः पातालगर्त्त बने] समुद्रों को भर दिया और पृथिवीलोक के जगत् को जलडमरु/द्वीप बना डाला। आपका दिव्य शरीर कितना बड़ा है इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है।।१६।।

---

१. परिघ अर्थात् अर्गलादण्ड द्र० कालिदास ५.२ मालविकाग्निमित्र; २.१६, ७.९ शाकुन्तल, ११.८७,१८.४ रघुवंश। मधुसूदन सरस्वती जी ने भुजा और परिघ में साम्य बतलाया 'अतिसुवृत्तपीवरदृढदीर्घत्व'।

२. पद्य १० के 'श्रद्धाभरगुरु' के समान 'पृषतलघु' क्रिया विशेषण है।

रथः क्षोणी, यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः।।१७।।

हे प्रभो! त्रिपुरासुर तो आपके लिए तृण था, परन्तु उसे जलाने के लिए आपने कितना बड़ा आडम्बर किया। पृथिवी को बनाया रथ, ब्रह्मा को बनाया सारथि, पर्वतराज [सुमेरु/हिमाचल] को बनाया धनुष, सूर्यचन्द्र को बनाया चक्र और भगवान् विष्णु को बनाया बाण। यह तो अपने आज्ञाकारी अनुचरों के साथ आपने खेल खेला था। सत्य तो यह है कि मालिकों की बुद्धि परतन्त्र नहीं होतीं, वे तो अपने अनुचरों के साथ क्रीडा करती हैं।।१८।।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्त्ति जगताम्।।१८।।

हे त्रिपुरारे! भगवान् विष्णु ने संकल्प किया कि वे आपकी पूजा करेंगे, पूजा कमलपुष्पों से होगी और कमलपुष्पों की संख्या होगी एक सहस्र। पूजा आरम्भ हुई, किन्तु ९९९पुष्पों तक ही पहुँची। कमलों की १००० संख्या में एक कमल कम पड़ गया। यह एक अलौकिक घटना थी। परन्तु भगवान् विष्णु कब चूकने वाले थे। उन्हें पुण्डरीकाक्ष कहा जाता है। उन्होंने तुरन्त ही अपना एक नेत्र निकाला और अर्पित कर दिया। कमलों की एक हजार संख्या पूरी कर ही दी। ऐसी थी भगवान् विष्णु की भगवान् शिव पर भक्ति। उनकी भक्ति का यह उद्रेक ही बन गया सुदर्शनचक्र जो तीनों लोकों की रक्षा के लिए सतत जागरूक रहता है।।१८।।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत् त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदान-प्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कृतपरिकरः कर्मसु जनः।।१९।।

हे त्रिपुरारे! यज्ञ जो किया करते हैं उन्हें जब फल मिलने को होता हैं तब यज्ञ तो सोया रहता है, जाग्रत् रहते हैं आप। दूसरे, कोई भी कर्म जो कि जड हुआ करता है और जो होकर समाप्त हो चुका रहता है, पुरुष [चेतन] के आराधन के विना कहाँ देखा गया है फल देता हुआ। इन तर्कों से यह देखकर कि सभी यज्ञों के फलदान में प्रतिभू [दिलाने वाले मध्यस्थ] आप हैं साथ ही यह सोचकर कि श्रुतियों के वचन प्रामाणिक हैं, [यज्ञ]कर्मों में निरत होता है यजमान।।१९।।

[मीमांसक यह मानता है कि फल देने वाला तो है यज्ञकर्म ही, परन्तु धर्मनामक अदृष्ट संस्कार के द्वारा, जो [संस्कार] यजमान की आत्मा में फलप्राप्ति के समय विद्यमान रहता है। यहाँ तर्क दिया जा रहा है कि उस संस्कार के साथ भी नियामक रूप में एक चेतन ईश्वर का रहना आवश्यक है, नहीं तो अव्यवस्था भी हो सकेगी।]

यहाँ कृतपरिकरः के स्थान पर दृढपरिकरः पाठ भी है।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्त्विज्यं शरणद! सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुषु फलदानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्त्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः।।२०।।

हे शरणद! क्रतुफल देने के व्यसनी आप से ही हुआ यज्ञ का विध्वंस, उस यज्ञ का ध्वंस जिसमें यजमान थे यज्ञक्रिया में निपुण और शरीरधारियों के अधीश दक्ष [प्रजापति], ऋत्विक् थे ऋषिगण और सदस्य थे सुरगण। इससे निष्कर्ष निकला कि श्रद्धारहित[1] यजमान के यज्ञ आभिचारिक ही होते हैं।।२०।।

प्रजानाथं नाथ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृश्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः।।२१।।

हे नाथ! एक बार प्रजानाथ/प्रजापति ब्रह्मा के मन में काम की आँधी उठी, वे दौड़े अपनी बेटी की ही ओर रमण के लिए। बेटी बन गई हरिणी तो ये [ब्रह्मा] भी बन गए हरिण। आपने लिया हाथ में धनुष और छोड़ा इस [ब्रह्मा] पर बाण, यद्यपि यह द्युलोक [स्वर्ग] में पहुँच गया था [जहाँ इस प्रकार का अनाचार दोष नहीं माना जाता] व्याध द्वारा मृग के पीछे दौड़ने की यह हविश त्रस्त ब्रह्मा को आज तक छोड़ नहीं रही हैं।।२१।। [मृगशिरा तथा आर्द्रा नक्षत्र की स्थिति में वह आज भी देखी जा सकती है। ब्रह्मा मृगशिरा नक्षत्र बन गए तो बाण भी आर्द्रा नक्षत्र के रूप में उनके पीछे लगा ही रहा।]

सूच्यः कहीं कहीं यह श्लोक नहीं भी मिलता।

स्वलावण्याशंसा-धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन! पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत! देहार्ध-घटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद! मुग्धा युवतयः।।२२।।

---

१. श्रद्धाविधुरमिति क्रियाविशेषणम्। क्रिया चाऽत्र कर्तृपदेन द्योत्या करणरूपा। यो हि श्रद्धां विहाय यजते तस्य यजनमभिचार एव भवति। अभिचारश्च मृत्युः। दक्ष-प्रजापतिरेवाऽत्र दृष्टान्तः।

हे पुरमथन! पुष्पायुध [कामदेव] ने [शिव जी के विरुद्ध] जो धनुष ताना था वह स्वयं [पार्वती जी] के [अपने] लावण्य के भरोसे, परन्तु देखा कि आपने उसे तृण के समान जला डाला। यह देखते हुए भी देवी पार्वती यदि देहार्ध बन जाने मात्र से आपको स्त्रैण [स्त्रीपरायण] समझती हों तो हे यम-[अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह] निरत! और वरद! सचमुच स्त्रियों को निरा और निपट मुग्ध [भोली भाली और नासमझ] ही कहना होगा।।२२।।
समानार्थक उक्ति-कुमारसंभव में ३.५७

तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।

जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंसे ।।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर! पिशाचाः सहचरा-

श्चिताभस्माऽऽलेपः स्रगपि नृकरोटी-परिकरः ।

अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं

तथापि स्मर्तॄणां वरद! परमं मङ्गलमसि।।२३।।

हे स्मरहर! आपका शील [स्वभाव और चरित] अमाङ्गलिक है, क्योंकि आप क्रीडा करते हैं श्मशानों में, आपके सहचर हैं पिशाच, अङ्गराग है चिताभस्म और आप जो माला पहनते हैं वह नरमुण्डों की हुआ करती है। यह तो आपका दिखावा है, यह यदि अमाङ्गलिक है तो रहे यह सब अमाङ्गलिक। जहाँ तक आपका संबन्ध है आप तो अपना स्मरण करने वाले प्रत्येक भक्त यथा रावण, बाण आदि के लिए, **हे वरद!** सबसे बड़े मङ्गल हैं।।२३।।

श्मशान शब्द का अर्थ सुषुम्णा नाडी भी है। महान् योगी शिव उसी में रमे हुए हैं। उसमें जो चैतन्य है वह स्थूल भूतों से भी युक्त है। इसी प्रकार पिशाच, चिताभस्म और नृकरोटी को भी भिन्न स्थितियों और तत्त्वों का प्रतीक माना जा सकता है।

ऊपर जो स्तुति की गई उसमें—'अतीतः पन्थानं' से तीनों पदार्थ प्रस्तुत किए गए, 'कतिविधगुणः' से सगुण ऐश्वर्य बतलाया गया, 'कस्य विषयः' कहकर ब्रह्मस्वरूप प्रस्तुत किया, 'पदे त्वर्वाचीने' के द्वारा लीलाविग्रहविहारादि प्रतिपादित हुए। इस प्रकार अभी तक तो हुई सगुण शिव [ब्रह्म] की स्तुति। अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप का प्रतिपादन अब—

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान्।।२४।।

हे वरद! मन को लौटाकर चित्त में एकाग्र कर लिया करते हैं यमी जन-[अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से युक्त योगी]। वे साध लेते है नेत्रों में हर्ष के अश्रु। यह इसलिए कि उनमें जागता है आह्लाद। ऐसा आह्लाद कि जैसे वे अमृत से भरे जलाशय में गोता लगा रहे हों। यह आह्लाद होता है जिस अन्तस्तत्त्व के दर्शन से वह, निस्सन्देह आप हैं।।२४।।

आठ योगाङ्ग — १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि। [पातञ्जल योगसूत्र ३.१-३]

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत् तत्त्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि।।२५।।

हे भगवन्! जो बड़े हैं वे भले ही आप में परिच्छेद देखें और वैसी ही वाणी बोलें कि—आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप वायु हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथिवी हैं और आत्मा भी आप हीं हैं, किन्तु हमें तो ऐसा एक भी तत्त्व नहीं मिला जो आप न हों, जो आप से भिन्न हो।।२५।।

उपर्युक्त आठ तत्त्वों की समष्टि को अष्टमूर्त्ति [शिव] कहा जाता है, किन्तु वाणी की ऐसी अशक्ति है कि जब वह एक का उल्लेख करती तब दूसरा छूट जाता है, इस प्रकार समग्रता का प्रतिपादन नहीं हो पाता। यदि सूर्य कहें तो चन्द्र आदि छूट जाते हैं और यदि चन्द्र आदि कहें तो सूर्य आदि छूटे रहते हैं।

उक्त सूची में भी 'काल, दिक्, अदृष्ट' आदि छूट जाते हैं।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमपि त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत् तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद! गृणात्योमिति पदम्।।२६।।

हे शरणद! 'ओम्' यह जो पद है यह आपका नाम है। यह पद समस्त भी है और व्यस्त भी। आप भी ऐसे ही हैं—समस्त भी और व्यस्त भी। समस्त ओम् आपके समस्त रूप का प्रतिपादन करता है और व्यस्त ओम् आपके व्यस्त रूप का। ओम् पद में तीन वर्ण हैं अ उ तथा म्। ये तीन अनेक त्रिकों के प्रतिपादक हैं जैसे त्रयी = ऋक्, यजुष् तथा साम, तीन वृत्तियाँ जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति, तीन भुवन भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक, तीन देव ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव।

आपका तुरीय धाम है अखण्डचैतन्य-रूप। वह विकृतियों से परे है। 'ओम्' के द्वारा उसको भी अपनी अणु ध्वनियों से अवरुद्ध कर लिया जाता है।।२६।।

समस्त ओंकार 'अश्च, उश्च मश्चेति कर्मधारयः'। समुदायशक्त्या।
व्यस्त ओंकार 'अश्च, उश्च, मश्चेति अवयवशक्त्या'।

समस्त शिव विश्वरूप, व्यस्त शिव अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत रूपों में आकलनीय। ओङ्कार के विषय में माण्डूक्योपनिषद्, छान्दोग्योपनिषत् तथा शिवपुराण आदि में विस्तृत विवेचन मिलता है।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहाँ-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव! श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते।।२७।।

हे देव! आपके आठ नाम है—१. भव, २. शर्व, ३. रुद्र, ४. पशुपति, ५. उग्र, ६. महादेव, ७. भीम तथा ८. ईशान। इन आठों नाम में से प्रत्येक नाम पर श्रुति भी विस्तृत और गम्भीर विचार करती है। मेरे सामने प्रत्यक्ष इस प्रिय प्रकाश के रूप में जो आप हैं आपको किया है मैंने प्रणाम।।२७।। [विचरति = विचारयति।]

नारायण के अनुसार

पृथ्वीमूर्त्ति में शिव की संज्ञा है शर्व, जलमूर्त्ति में भव, अग्निमूर्त्ति में रुद्र, वायुमूर्त्ति में उग्र, आकाशमूर्त्ति में भीम, यजमानमूर्त्ति में पशुपति, चन्द्रमूर्त्ति में महादेव और सूर्यमूर्त्ति में ईशान। भट्ट हेमाद्रि ने रघुवंश ५.४ पद्य में दर्पण लिखते हुए कहा है—अष्टमूर्त्तेः स्वमूर्त्तिभेदेन नामविभागः तद्यथा 'सूर्ये रुद्रः, जले भवः, भूमौ शर्वः, वायावीशानः, अग्नौ पशुपतिः, आकाशे भीमः, दीक्षिते उग्रः, चन्द्रमसि महादेव' इति। दीक्षितस्योग्रसंज्ञा महिम्नःस्तुतौ च 'भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिः' इत्यादिना। स्पष्ट ही सूर्य, वायु, अग्नि और दीक्षित में उन्होंने शिव की भिन्न ही मूर्त्तियाँ मानी हैं।

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर! महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः।।२८।।

हे प्रियदव! आपको लगता है प्रिय दव अर्थात् निर्जन एकान्त, आप विरक्त जो ठहरे। इस कारण आप नेदिष्ठ हैं = अत्यन्त पास हैं। आपको प्रणाम, साथ ही आप दविष्ठ हैं अत्यन्त दूर हैं। आपको प्रणाम। उल्टे जो नेदिष्ठ है वह भी आप ही हैं तथा जो दविष्ठ है वह भी आप ही।

हे स्मरहर! आपने ब्रह्मचर्य की पराकाष्ठा दिखलाई और विषयरूपी स्मर [काम] को जला कर भस्म कर दिया। अब आप दोनों ही प्रकार के हैं—सबसे छोटे [क्षोदिष्ठ भी] और सबसे बड़े [महिष्ठ भी]। आपको दोनों रूपों में प्रणाम। क्षोदिष्ठ रूप में भी प्रणाम और महिष्ठ रूप में भी। उल्टे जो क्षोदिष्ठ है वह भी आप ही हैं और जो महिष्ठ वह भी आप ही।

हे त्रिनयन! आपके तीन नेत्र हैं, तीन हैं आपके नेत्र। एक नेत्र सूर्य, एक नेत्र चन्द्र और एक नेत्र अग्नि। सूर्य और चन्द्र से ही होता है काल का निरूपण। अतः आपको सबसे छोटा यविष्ठ भी कहा जा सकता है और सबसे बड़ा वर्षिष्ठ भी। दोनों रूपों में आपको प्रणाम। वर्षिष्ठ रूप में भी आपको प्रणाम और यविष्ठ रूप में भी। उल्टे जो वर्षिष्ठ है उसे प्रणाम और उसे भी जो यविष्ठ है।

हे सर्वरूप शर्व! सभी रूप आपके ही हैं अतः आप सर्व हैं, स्पष्टीकरण के लिए आप शर्व हैं। आप ही हैं 'तत्' = 'वह' यानी परोक्ष और दूरस्थ और आप ही हैं 'इदम्' = 'यह' यानी प्रत्यक्ष और समीपस्थ। आपको प्रणाम। सर्वके दो पक्ष हो सकते हैं—तत् और इदम् या इदम्

और तत्। और न इदम् न तत् अतः सर्व/शर्व। आपको प्रणाम। हमें विश्वास है कि अब कोई भी रूप छूटा नहीं, जिसे हमारे प्रणाम न हुए हों। सच यह कि आप पदार्थ नहीं हैं जो अनन्त है। आप तो वाक्यार्थब्रह्म हैं, स्फोट हैं।।२८।।

बलहरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः।।२९।।

भगवन्! जब विश्व की उत्पत्ति होने को होती है तब आप में रजोगुण की मात्रा बढ़ जाती है। तब आपको कह दिया जाता है भव। **हे भव!** आपको नमः, आपको नमः।

जब इस विश्व का संहार होने को होता है तब आप में बढ़ जाता है तमोगुण। तब आपको कहा जाता है हर। **हे हर**। आपको प्रणाम, आपको प्रणाम।

जब जन जन को सुखी बनाना होता है तब आप में बढ़ जाता है सत्त्वगुण। तब आपको कहा जाता है मृड। **हे मृड!** आपको प्रणाम, आपको प्रणाम। किन्तु—

जब आप इन तीनों गुणों के ऊपर रहते और आपमें केवल प्रकाश रहता है, तब आपके उस धाम को कहा जाया करता है 'शिव'। **हे शिव!** आपको प्रणाम, आपको प्रणाम। भव को प्रणाम। हर को प्रणाम। मृड को प्रणाम। शिव को प्रणाम[१]।

यानी रज को प्रणाम, तम को प्रणाम, सत्त्व को प्रणाम। तीनों की अनुद्रिक्त स्थिति[२] प्रकृति को प्रणाम और प्रकृति से परे परम शिव को प्रणाम।

---

१. कृपा होगी यदि दृष्टि डालेंगे संपादक द्वारा विरचित महाकाव्य 'स्वातन्त्र्यसंभवम्' के १३.३६-३७ पद्यों पर। इसी प्रकार १२.४६-५२ पद्यों पर।
२. प्रकृति का लक्षण है 'त्रैगुण्यं प्रकृतिः' = प्रकृति यानी तीन गुण।

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद! चरणयोस्ते वाक्य-पुष्पोपहारम्।।३०।।

हे **वरद**! मेरा यह चित्त कैसा? कि जिसकी पहुँच बहुत अधिक दुबली, और आपकी समृद्धि कैसी? कि जिसके गुणों की सीमा नहीं। फिर मेरा चित्त स्वस्थ भी नहीं [अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक] क्लेशों की पकड़ में जकड़ा हुआ है यह। इसलिए **हे भगवन्**! मैं तो चकित हूँ। पहले भी चकित ही था। यह तो आपकी भक्ति महारानी है जिसने मेरी मन्दता कम की और उसी भक्ति ने आपके चरणयुगल में वाक्यरूपी पुष्पों की लड़ी[1] अर्पित की।।३०।।

।। ॐ तत् सत् ।।

अत्रैव हन्त मधुसूदनपादटीका
पूर्त्तिं गता स्तुतिमिहैव निरूप्य पूर्णाम्।
नारायणस्तु चतुरश्चतुरः पराँश्च
श्लोकानिह प्रतिभया विवरीवरीति।।
अहं सनातनो रेवाप्रसादः काश्यपः शिवे,
समर्पयानि स्वामेतां लेखसेवासरस्वतीम्।
भ्राद्रकृष्णाष्टमी कृष्णजन्माष्टम्येषकास्तु नः,
प्रसन्ना शुक्रवारो यां सेवतेऽद्य प्रवर्षणे।।

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्व्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व्वकालं
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति।।१।।

---

१. संस्कृत में 'उपहार' शब्द गुँथे हुए पुष्पों की लड़ी के लिए आता है। रघुवंश में– 'भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः' ५.७४। इसी प्रकार ललितविस्तर आदि में।

हे ईश! सिन्धु को पात्र [दबात, मसीधानी] बनाया जाए, फिर उसमें काले पहाड़ सा विशालकाय कज्जल घोला जाए, लेखनी बनाई जाए सर्वोत्कृष्ट कल्पवृक्ष[१] [परिजात] की शाखा को और कागज पृथिवी को। इस सामग्री को लेकर लिखने का काम करे साक्षात् शारदा और वह भी लिखती ही रहे, कभी भी क्षण भर के लिए भी रुके नहीं, तब भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती।।१।।

असुर-सुर-मुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार।।२।।

भगवान् अर्धेन्दुमौलि की अर्चना असुरों ने भी की, सुरों ने भी और मुनीन्द्रों ने भी और वे सब अभी तक करते आ रहे हैं शिव की स्तुति। स्तुति में इन सबने शिव के गुणों की महिमा को निबद्ध कर रखा है, यद्यपि हैं शिव गुणों से दूर, क्योंकि वे ईश्वर हैं। ईश्वर यानी समर्थ यानी वे ऐसा करने में सफल हो सकते हैं। उसी स्तुति को शिव जी के सभी गणों में वरिष्ठ गण ने जिसका नाम है पुष्पदन्त, इस स्तोत्र [महिम्नःस्तोत्र] के रूप में [शिखरिणी, मालिनी और हरिणी जैसे] बड़े-बड़े वृत्तों में प्रस्तुत कर तैयार किया यह स्तोत्र।।२।।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान् कीर्त्तिमाँश्च।।३।।

भगवान् धूर्जटि = शिव के इस स्तोत्र को जो मनुष्य शुद्ध चित्त से भक्ति के साथ प्रतिदिन पढ़ता है वह शिवलोक में रुद्र जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त

१. रघुवंश ६.६ 'कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः'।

करता है और यहाँ पृथिवीलोक में उसे प्रचुरतर धन और प्रचुरतर सम्पत्ति प्राप्त होती है। उसे कीर्त्ति भी मिलती है।।३।।

महेशान्नाऽपरो देवो महिम्नो नो परा स्तुतिः।
अघोरान्न परो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।।४।।

देव है तो एक ही महेश, दूसरा नहीं, स्तुति है तो एक महिम्नःस्तुति, दूसरी नहीं, मन्त्र है तो एक अघोरमन्त्र, अन्य कोई नहीं [और] तत्त्व है तो एक गुरुतत्त्व और कोई नहीं।।४।।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।५।।

[मन्त्र] दीक्षा, दान, तप, तीर्थ, ज्ञान और यागादि क्रियाएँ–ये सब 'महिम्नःस्तव' के पाठ की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकते।।५।।

नारायणी टीका

दीक्षा - गुरुमुख से स्वेष्टदेवतामन्त्रग्रहण।
दानम् - स्व-स्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनम्।
तपः - शास्त्रोक्तक्लेशजनक कर्म।
तीर्थम्- तरति पापादिकं यस्मात् तत् तीर्थम् गङ्गादिकम्।
ज्ञानम्- मोक्षे धीर्ज्ञानम् [अमरः]।
यागः - यज्ञः। आदि पद से वेदाध्ययन, परोपकार, देवालयनिर्माण, सेतुबन्ध, औषधालयस्थापन आदि।

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशु-[१]शशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः।।६।।

---

१. 'शशधरवरमौलेः' इति पाठे। शशिधरवरेति लेखोऽर्थाननुसन्धानात्।

पुष्पदन्त नाम का एक गन्धर्व था। सभी गन्धर्वों में वह उत्कृष्ट था। वह था भक्त भगवान् शंकर का। इन्हीं के रोष से वह अपनी महिमा से च्युत हो गया तो उसी ने यह अतीव दिव्य स्तोत्र बनाया। इसका नाम है 'महिम्नःस्तोत्र'।।६।।

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ।।७।।

पुष्पदन्त द्वारा प्रणीत यह जो स्तवन है यह अमोघ है। इसकी पूजा सभी करते हैं बड़े से बड़े देवता भी और मुनिजन भी। इससे स्वर्ग भी मिलता है और मोक्ष भी। प्रत्युत स्वर्ग और मोक्ष के अन्य हेतुओं की अपेक्षा यह अधिक प्रबल है। हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त होकर इसे यदि मनुष्य पढ़े तो वह शिव-सामीप्य प्राप्त करता है। उस समय किन्नरगण उसकी स्तुति में लगे रहते हैं।।७।।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वर-वर्णनम् ।।८।।

यह स्तोत्र आरम्भ से अन्त तक पवित्र है। यह तो गन्धर्व की उक्ति है। इसकी तुलना नहीं। यह तो अत्यन्त कल्याणकारी किन्तु मनोहारी वर्णन है ईश्वर यानी भगवान् शिव का।।८।।

ईश्वर भगवान् शङ्कर का नाम है वैसे ही जैसे राम का नाम राम।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ।।९।।

यह वाङ्मयी पूजा भगवान् शङ्कर के श्रीचरणों पर अर्पित है। इससे देवाधिदेव भगवान् सदाशिव प्रसन्न हों।।९।।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर!
यादृशोऽसि महादेव! तादृशाय नमो नमः ।।१०।।

हे महेश्वर! में आपका तत्त्व जानता नहीं कि आप कैसे हैं। परन्तु आप जैसे भी हों उसी रूप में हे महादेव! आपको प्रणाम, प्रणाम।।१०।।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।।११।।

जो मनुष्य शिवमहिम्नःस्तोत्र को [प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्याकाल में से] एक काल दो काल या तीनों कालों में पढ़ता है उसके सभी पाप छूट जाते हैं और उसकी शिवलोक में पूजा हुआ करती है।।११।।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः।।१२।।

श्रीपुष्पदन्त के मुखकमल से निकले पापनाशक और शिव जी को प्रिय इस स्तोत्र को कण्ठस्थित करके एकाग्रचित्त से पाठ किया जाए तो उससे भूतपति शंकर भगवान् अत्यधिक प्रसन्न होते हैं।।१२।।

।। श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रं संपूर्णम्।।

द्वादशैतानि पद्यानि सुप्रचाराणि साम्प्रतम्।
महिम्नःस्तोत्रपूर्णायां द्वादशीयं प्ररोचताम्।।१।।

सनातनेन श्रीरेवाप्रसादेन द्विवेदिना।
लिखितं स्तोत्रमेतत् स्यान्महादेवाय[1] सुप्रियम्।।२।।

ऋतुबाणाभ्रदस्राब्दे विक्रमस्य गतेऽष्टमीम्।
श्रीकृष्णजन्मनः स्तोत्रलेखोऽयं नः प्रसर्पति।।३।।[2]

०२. सितम्बर, १९९९, काशीपुरी

---

१. महादेवः कवितार्किकचक्रवर्ती सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः पं. श्रीमहादेवशास्त्री, विद्यागुरुः श्रीरेवाप्रसादस्य द्विवेदिनः।

२. नारायणी टीका इस 'श्रीपुष्पदन्त' पद्य तक आयी। इसके आगे वाक्य है— 'इति महिम्नस्तवस्य नारायणीटीका समाप्ता।

श्लोकानुक्रमः